* VEDIC : POLITICAL - CONDITION 2(c)

किसी भी समाज की राजनीतिक व्यवस्था को सामाजिक आर्थिक परिस्थितियाँ उतना ही प्रभावित करती है जितना कि राजनीतिक व्यवस्था सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों को करती है। वैदिक काल की राजनीतिक व्यवस्था के लिए भी यह बात उतना ही सच है। ऋग्वैदिक समाज चूंकि जनजातीय, पशुपालक तथा अर्द्धयायावर किस्म की थी इसीलिए इस काल में राजनीतिक व्यवस्था का सरल रूप दिखाई पड़ता है जबकि उत्तरवैदिक काल मे हुये सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों के फलस्वरूप हमें जटिल राजनीतिक व्यवस्था देखने को मिलता है।

ऋग्वैदिक आर्यों का राजनीतिक संगठन कबीलाई किस्म का था जिसका शासन तंत्र कबीले के प्रधान के हाथों चलता था। वह 'राजन' कहलाता था जो किसी निश्चित भू-भाग पर नहीं बल्कि अपने कबीले (जन) पर शासन करता था। शासनतंत्र सरल होने के कारण राजा के अधिकार तथा कर्तव्य तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप थे। राजा मुख्यतः सैनिक नायक होता था जिसे राजा बने रहने के लिए तथा जन की सुरक्षा के लिए युद्ध में कुशल होना एक अनिवार्य शर्त थी। अपने इसी गुण के कारण राजा "जनस्य-गोपा" (जनों का रक्षक) कहलाता था। जनों के मवेशियों को सुरक्षा प्रदान करना, उनकी ओर से युद्ध लड़ना तथा समृद्धि के लिए देवताओं की प्रार्थना करना, शरणागत को सुरक्षा प्रदान करना उसके अन्य कर्तव्य थे। इस काल मे राजा की मर्यादा का निर्धारक क्षेत्रातित विस्तार न होकर उसकी लोकप्रियता थी।

राजपद वंशानुगत होने के बावजूद उसके अधिकार सीमित थे। उसे कबीलाई संघठनों से परामर्श लेना पड़ता था इस प्रकार ये कबीलाई संघटन राजा की निरंकुशता पर अंकुश लगाते थे। ये संघटन सभा, समिति, विदथ तथा गण के रूप में जाने जाते। साहित्यिक स्रोतों से इन जन-परिषदों के कार्यों का यद्यपि स्पष्ट पता नहीं चलता है लेकिन अनुमान है कि सभा, कबीले के बुजुर्ग सदस्यों की परिषद थी जबकि समिति कबीले की आम सभा थी जो राजा का निर्वाचन करती थी। विदथ आर्यों का प्राचीनतम राजनीतिक संस्था थी। इन संघटनों में जनता के हितों, सैनिक अभियानों और धार्मिक अनुष्ठानों के बारे में विचार विमर्श होता था। इनमें राजा का भाग लेना अनिवार्य था। गौरतलब बात है कि इस काल मे सभा तथा विदथ में महिलायें भी भाग लेती थी जो कि एक उल्लेखनीय बात है। सभा एवं समिति का महत्व इतना था कि राजा इनके सहयोग के लिए निरंतर प्रयासरत रहते थे।

सुचारु रूप से प्रशासन चलाने के लिए राजा के कुछ महत्वपूर्ण सहयोगी भी थे। इनमें से सबसे महत्वपूर्ण अधिकारी 'पुरोहित' होता था। राजा के कर्तव्यों का उपदेश देना, गुणगान करना तथा धार्मिक क्रियाकलाप सम्पादित करना इनका प्रमुख कर्तव्य था।

सेनानी दूसरा महत्वपूर्ण अधिकारी होता जो सैन्य आवश्यकताओं की पूर्ति करता था। इस काल में प्रजा द्वारा राजा को स्वेच्छा से बलि देने के कारण कर संग्रहकरने वाला अधिकारी का जिक्र नहीं मिलता है। हमें न्यायाधिकारी का भी उल्लेख नहीं मिलता है लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि यह एक आदर्श समाज था क्योंकि इसकाल में पशुओं की चोरी आम बात थी जिसके कारण अक्सर झगड़ा होते रहता था। समाजविरोधी हरकतों को रोकने के लिए गुप्तचर रखे जाते थे।

हमें कुछ क्षेत्रीय महत्व के अधिकारी का भी उल्लेख मिलता है। चारागाह के अधिकारी व्राजपति कहलाता था जिसका युद्ध में सहयोगी परिवारों के प्रधान 'कुलप' तथा लड़ाकु दल का प्रधान 'ग्रामणी' होता था। राजा के पास नियमित या स्थायी सेना नहीं होती थी। युद्ध के समय एक नागरिक सेना का गठन किया जाता था जिसका सैन्य-संचालन व्रात, गण, ग्राम और सर्ध नामक विभिन्न कबायली टोलियों के हाथ में रहता था।

इस काल में प्रशासन की छोटी ईकाई गृह या परिवार था। इसके ऊपर ग्राम, ग्राम के ऊपर विश अवस्थित था तथा विश के ऊपर जन। ऋग्वेद में 'जन' की चर्चा 275 बार हुई है जबकि 'जनपद' शब्द का एक बार भी नहीं। इस आधार पर माना जा सकता है कि ऋग्वैदिक काल में प्रशासन की इकाई के रूप में जनपद का विकास नहीं हुआ था।

इस प्रकार ऋग्वैदिक शासनतंत्र कुल मिलाकर कबायली ढंग का शासन था जिसमें सैनिक तत्व प्रबल था। इसके बावजूद हमें इस काल में परपीड़क शासनतंत्र का संकेत नहीं मिलता है। राजा के अधिकार सीमित थे तथा पशुचारी अर्थव्यवस्था रहने के कारण प्रजा पर नियमित करों का आरोपण न था। शासक वर्ग द्वारा युद्ध में प्राप्त भेंट तथा लूट की वस्तुएं वैदिक सभा में बांट दी जाती थी लेकिन हमें इस काल में लोगों द्वारा निरंतर स्थान बदलते रहने के कारण स्थायी नागरिक प्रशासन या प्रादेशिक प्रशासन का अस्तित्व देखने को नहीं मिलता है।

उत्तरवैदिक काल में भौतिक एवं सामाजिक विकास के कारण राजनीतिक व्यवस्था में भी परिवर्तन हुआ। सीमित स्तरों पर अब लोहे का प्रयोग शुरू हो गया तथा कृषि मुख्य पेशा बन गयी। इस काल में सामाजिक विभेदीकरण अधिक स्पष्ट हो गया फलतः राजनीति में संरचनात्मक एवं संगठनात्मक परिवर्तन दृष्टिगोचर हुये।

उत्तरवैदिक काल में जन-परिषदों ने अपना महत्व खो दिया जिससे राजकीय प्रभुत्व में वृद्धि हुई। विदथ का अस्तित्व अब समाप्त हो गया। सभा, समितियों में राजाओं, पुरोहितों तथा धनी लोगों का वर्चस्व बढ़ गया। स्त्रियों का जन-परिषदों में प्रवेश वर्जित हो गया।

सभा, समिति जैसे जनपरिषदों की शक्ति में ह्रास ने राजा के अधिकारों में वृद्धि की। अब राजा सर्वजनिन, सर्वभूमिपति और एकराट जैसी उपाधियां लेने लगा। धार्मिक कर्मकांडों के विधान ने राजा को और भी प्रभावशाली बना दिया। उदित होते हुये ब्राह्मण वर्ग ने विभिन्न यज्ञों के माध्यम से राजा में दैवीय गुण आरोपित किये। यहीं से दोनों वर्गों में पारस्परिक निर्भरता का श्रीगणेश हुआ। इस काल में राजपद को पैतृक बनाने की प्रवृत्ति बढ़ी।

सामाजिक-आर्थिक अवस्था के स्थायित्व के फलस्वरूप राजत्व के चरित्र में भी परिवर्तन हुआ। ऋग्वेद के कबीलाई राजनीति के स्थान पर राजत्व के क्षेत्रीय स्वरूप का उदय हुआ। समकालीन साहित्य में देश के विभिन्न भागों में प्रचलित सरकार के स्वरूप के संबंध में जानकारी मिलती है। इस समय अनेक राज्य अस्तित्व में आये जिसमें हस्तिनापुर, कोसल, विदेह तथा मगध प्रमुख थे।

इस काल में कराधान प्रचलन में आया जिससे प्रादेशिक राजतंत्र को बल मिला। अवस्थित जीवन एवं स्थायी कृषि के फलस्वरूप पैदावार में वृद्धि हुई जिसे करों के रूप में राजा ने अतिरिक्त पैदावार की उगाही प्रारम्भ कर दी। शतपथ ब्राह्मण में राजा को "विशमत्ता" (जनता का भक्षक) कहा गया है। भागदुघ नामक अधिकारी कर संग्रह करता था। यह व्यवस्था ऋग्वैदिक काल में राजा द्वारा स्वैच्छिक भेंट प्राप्त करने से भिन्न थी।

निश्चित कराधान ने स्थायी प्रशासन के विकास को प्रोत्साहित किया। हमें इस काल में 12 रत्नियों की जानकारी मिलती है। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं - युवराज, पुरोहित, सेनानी, भागदुघ, संग्रहित्री, ग्रामिणी, गोविकर्तन, पालागल, अक्षावाप आदि। इनमें पुरोहित तथा संग्रहित्री प्रमुख थे। सम्भवतः ये रत्निन राजा को उसके कार्यों में सहयोग देने एवं संसाधन जुटाने का कार्य करते थे। ये अधिकारीगण राजा के सीधे नियंत्रण में थे तथा अमलोगों द्वारा प्राप्त करों द्वारा इनका पोषण होता था।

निम्नस्तरीय प्रशासन सम्भवतः ग्रामसभाओं के जिम्मे था जिसपर प्रधान कबीलों के सरदार का नियंत्रण होता था। इस काल में भी राजा की कोई नियमित सेना न थी एवं युद्ध के अवसरों पर कबीलाई टुकड़ियाँ एकत्र की जाती थी।

इस प्रकार सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों ने वैदिक राजनीति को प्रभावित किया। जैसे-2 जनपरिषदों का महत्व घटता गया राजा के अधिकारों में वैसे-2 वृद्धि होती गयी, प्रशासनिक तंत्र का स्वरूप जटिल होते गया तथा राजतंत्र कबीलाई से प्रदेशाश्रित हो गया।